LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

3/3 (श्लोक 20-28), शनिवार, 25 अप्रैल 2026

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/wXjXn2091jg

"त्रिगुणात्मक श्रद्धानुसार यज्ञ, दान और तप"

आज के इस दिव्य सत्र का शुभारम्भ सुमधुर प्रार्थना, हनुमान चालीसा के पाठ तथा दीप-प्रज्ज्वलन के साथ सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण एवं पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में श्रद्धापूर्वक वन्दना अर्पित की गई। इससे सम्पूर्ण वातावरण पवित्र, शान्त तथा एकाग्रचित्त बन गया।

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रत्येक अध्याय हमें यह सिखाता है कि जीवन को श्रेष्ठ, सन्तुलित तथा सार्थक रूप में कैसे जिया जाए। यह केवल पढ़ने का ग्रन्थ नहीं है, इसे अपने जीवन में अपनाना ही इसका वास्तविक उद्देश्य है।

यह सत्र विशेष रूप से बच्चों के लिए आयोजित किया गया इसलिए विषय को सरल, संवादात्मक तथा रोचक शैली में समझाया गया जिससे सभी बच्चे इसे ध्यानपूर्वक समझ सकें।

आज हम सत्रहवें अध्याय **"श्रद्धात्रयविभागयोग"** के अन्तिम भाग का अध्ययन कर रहे हैं। पिछले सत्र में तीन प्रकार की **श्रद्धा** के बारे में जाना गया था इसलिए आज एक छोटा पुनरावर्तन (Revision) किया गया।

प्रश्न- श्रद्धा कितने प्रकार की होती है?
उत्तर- श्रद्धा तीन प्रकार की होती है- सात्त्विक, राजसिक, तामसिक।

प्रश्न- सात्त्विक श्रद्धा वाले व्यक्ति का लक्ष्य क्या होता है?
उत्तर- सात्त्विक श्रद्धा वाले व्यक्ति का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति होता है। वह अपने सभी कार्य शास्त्रानुसार तथा निःस्वार्थ भाव से करता है।

प्रश्न- राजसिक श्रद्धा वाले व्यक्ति की विशेषता क्या है?
उत्तर- राजसिक श्रद्धा वाला व्यक्ति अच्छे कर्म करता है, साथ ही अपने लाभ, इच्छाओं तथा सुख की पूर्ति को भी महत्त्व देता है।

प्रश्न- तामसिक श्रद्धा का स्वरूप कैसा होता है?
उत्तर- तामसिक श्रद्धा अज्ञान से युक्त होती है। इसमें व्यक्ति न तो अपने हित का विचार करता है, न ही दूसरों के हित का।

तीनों प्रकार की श्रद्धा हमारे स्वभाव से जुड़ी होती है। यह स्वभाव हमें जन्म से ही प्राप्त होता है। उसी के अनुसार हमारे विचार और

कर्म बनते हैं।

सात्त्विक श्रद्धा वाले बच्चे और व्यक्ति हमेशा अच्छे कार्य करने का प्रयास करते हैं। उनके मन में श्रीभगवान् को पाने की इच्छा होती है। वे भोजन भी शुद्ध लेते हैं, यज्ञ, तप और दान भी शास्त्र के अनुसार करते हैं।

राजसिक श्रद्धा वाले व्यक्ति भी अच्छे कार्य करते हैं साथ ही अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं। उन्हें अच्छे अङ्क, अच्छा घर, अच्छे खिलौने जैसी बातें प्रिय होती हैं। उनके कर्मों में कभी-कभी अहङ्कार का भाव भी आ जाता है।

तामसिक श्रद्धा वाले व्यक्ति बिना सोचे-समझे कार्य करते हैं। उन्हें अपने या दूसरों के हित का विचार नहीं रहता। उनके कर्म हानिकारक भी हो सकते हैं।

पिछले सत्र में आहार, यज्ञ और तप के तीनों प्रकारों को समझाया गया था-

सात्त्विक आहार, यज्ञ और तप

राजसिक आहार, यज्ञ और तप

तामसिक आहार, यज्ञ और तप

अब इस सत्र में हम यह जानेंगे कि इन तीन प्रकार की **श्रद्धा** वाले व्यक्ति **दान** किस प्रकार करते हैं।

17.20

दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान यहाँ बताते हैं कि **यज्ञ, दान तथा तप** हमारे जीवन के आवश्यक कर्तव्य हैं। जैसे एक विद्यार्थी के लिए विद्यालय जाना, पढ़ाई करना तथा अच्छा व्यक्ति बनना आवश्यक होता है, उसी प्रकार बड़े होने पर यज्ञ, दान और तप का पालन करना भी आवश्यक माना गया है।

प्रश्न- हमारे पास जो कुछ भी है, वह किसका दिया हुआ है?
उत्तर- हमारे पास जो कुछ भी है, वह परमात्मा का दिया हुआ है। माता-पिता उसके माध्यम हैं।

प्रश्न- दान किसे देना चाहिए?
उत्तर- दान ऐसे व्यक्ति को देना चाहिए जिसे वास्तव में उसकी आवश्यकता हो।

प्रश्न- दान देते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
उत्तर- दान देते समय देश, काल और पात्र का विचार करना चाहिए। जिसे जो आवश्यकता हो, उसी के अनुसार वस्तु प्रदान करनी चाहिए।

हम सभी के पास कुछ न कुछ अवश्य होता है- पुस्तकें, पेंसिल, खिलौने, कपड़े या थोड़ी-सी पॉकेट मनी। यह सब हमें परमात्मा की कृपा से प्राप्त होता है। इस कारण हमें कृतज्ञ रहना चाहिए तथा अपनी वस्तुओं में से थोड़ा भाग दूसरों के साथ बाँटना चाहिए।

दान का अर्थ है- किसी आवश्यकता वाले व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार वस्तु देना। उदाहरण के रूप में, अत्यधिक गर्मी के समय किसी को ऊनी वस्त्र देना उचित नहीं माना जाता। उस समय जल, हल्के वस्त्र या अन्य उपयोगी वस्तु देना अधिक उचित होता है।

बच्चे भी दान कर सकते हैं-

अच्छी अवस्था में रखे हुए खिलौने,

उपयोगी पुस्तकें,

पेन, पेंसिल और कॉपी,

जन्मदिन पर प्राप्त उपहारों का एक भाग।

इन वस्तुओं को किसी आवश्यकता वाले बच्चे को देकर उसे प्रसन्न किया जा सकता है। यह दान प्रेम और करुणा का अभ्यास कराता है।

दान बिना किसी अपेक्षा के कर्तव्य भावना से, प्रसन्नता के साथ करने पर वह सात्त्विक दान कहलाता है। इसमें अहङ्कार, दिखावा या बदले में कुछ पाने की इच्छा नहीं होती।

प्रिय वस्तु को भी प्रेमपूर्वक देना सात्त्विकता का भाव माना जाता है। अनुपयोगी अथवा खराब वस्तु देना उचित नहीं होता। दान सदैव उपयोगी तथा अच्छी अवस्था की वस्तु का होना चाहिए।

दान केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं है।

भूखे को भोजन देना- अन्नदान

वस्त्र देना- वस्त्रदान

ज्ञान देना- विद्यादान

नेत्रदान, अङ्गदान- जीवनदान

ये सभी दान समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। हमारे पास जो कुछ है वह परमात्मा का दिया हुआ है। उसमें से थोड़ा भाग आवश्यकता वाले लोगों को देना हमारा कर्तव्य है। प्रेम, श्रद्धा और प्रसन्नता के साथ किया गया दान ही सच्चा दान होता है।

17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|
दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहतें हैं कि **'दान'** किसी अपेक्षा, स्वार्थ अथवा अहङ्कार के साथ करने पर वह राजसिक दान कहलाता है। दान का वास्तविक अर्थ कर्तव्य भावना से, निःस्वार्थ भाव से देना है। किसी प्रकार का लाभ पाने की इच्छा दान की शुद्धता को कम कर देती है।

प्रश्न- राजसिक दान किसे कहा जाता है?
उत्तर- जब दान बदले में कुछ पाने की इच्छा से या अहङ्कार के साथ किया जाता है, तब उसे राजसिक दान कहा जाता है।

प्रश्न- दान देते समय कैसा भाव होना चाहिए?
उत्तर- दान देते समय प्रसन्नता, प्रेम तथा कर्तव्य का भाव होना चाहिए।

प्रश्न- क्या दान के बदले कुछ अपेक्षा करनी चाहिए?
उत्तर- दान के बदले कोई अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। हम किसी को कभी-कभी इस भावना से कुछ देते हैं कि वह आगे चलकर हमारे काम आएगा। यह सही भाव नहीं माना जाता। दान सदैव निःस्वार्थ होना चाहिए। किसी को कुछ देते समय मन में यह भावना होनी चाहिए कि यह सब श्रीभगवान् का ही दिया हुआ है और उसी को अर्पित किया जा रहा है।

'दान' करते समय **"ॐश्रीकृष्णार्पणमस्तु"** का भाव रखना चाहिए। इसका अर्थ है कि जो भी दिया जा रहा है वह श्रीभगवान् को समर्पित किया जा रहा है। इस भावना के बाद मन में पुनः कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती।

विद्यालय में कभी-कभी विद्यार्थियों से कहा जाता है कि वे अपनी अतिरिक्त पुस्तकें दान करें। उस समय यदि कोई बच्चा अपनी प्रिय पुस्तक को देने में दुःख अनुभव करता है, तब वह दान पूर्ण शुद्ध भाव से नहीं किया गया माना जाता। दान सदैव प्रसन्नता और सहजता से किया जाना चाहिए।

भोजन का उदाहरण से भी समझा जा सकता है। किसी विद्यार्थी के पास टिफिन है और उसके मित्र के पास भोजन नहीं है। ऐसे समय अपने भोजन का कुछ भाग साझा करना उत्तम भावना को दर्शाता है। इसमें त्याग, करुणा और सहयोग की भावना विकसित होती है।

राजसिक दान की पहचान

दान करते समय मन में प्रत्युपकार की इच्छा,

दान के बदले प्रशंसा या सम्मान की अपेक्षा,

नाम और यश प्राप्त करने की भावना,

दान देते समय मन में क्लेश या असंतोष।

इन सभी भावों से किया गया दान राजसिक कहलाता है।

शास्त्रों में बताए गए मार्ग के अनुसार, दान शुद्ध भावना से किया जाना चाहिए। जब दान बिना अहङ्कार, बिना अपेक्षा और प्रसन्नता के साथ किया जाता है तब वह सात्त्विक बन जाता है।

17.22

अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|
असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि दान यदि बिना विचार के, अनुचित समय पर, अयोग्य व्यक्ति को अथवा तिरस्कारपूर्ण भाव से दिया जाता है, वह तामसिक दान कहलाता है। ऐसे दान में न तो करुणा का भाव होता है और न ही विवेक का।

प्रश्न- तामसिक दान किसे कहा जाता है?
उत्तर- जो दान गलत समय पर, अयोग्य व्यक्ति को या तिरस्कार के साथ दिया जाता है, वह तामसिक दान कहलाता है।

प्रश्न- क्या आवश्यकता के अनुसार दान देना आवश्यक है?
उत्तर- हाँ, दान सदैव आवश्यकता के अनुसार ही देना चाहिए।

प्रश्न- तीनों दानों में श्रेष्ठ कौन सा है?
उत्तर- सात्त्विक दान सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

दान करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सामने वाले व्यक्ति को वास्तव में किस वस्तु की आवश्यकता है। अत्यधिक गर्मी में किसी को ऊनी वस्त्र देना उपयोगी नहीं होता। उसी प्रकार, भूखे व्यक्ति को भोजन के स्थान पर कोई अन्य वस्तु देना उचित नहीं माना जाता।

जिस व्यक्ति को जिस समय जो आवश्यकता हो, उसी के अनुसार सहायता प्रदान करना ही सही दान है। बिना विचार किए अथवा केवल दिखावे के लिए दी गई वस्तु तामसिक दान बन जाती है।

तामसिक दान की पहचान

तिरस्कार या क्रोध के साथ दान देना,

बिना सोचे-समझे दान करना,

अयोग्य व्यक्ति को दान देना,

केवल दिखावे के लिए दान करना।

ऐसे सभी भाव तामसिक दान को दर्शाते हैं।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक- तीनों प्रकार के दान में वस्तु दी जाती है किन्तु भाव और उद्देश्य भिन्न होते हैं। सात्त्विक दान सबसे श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि उसमें शुद्ध श्रद्धा, सही पात्र तथा निःस्वार्थ भाव होता है।

राजसिक दान में स्वार्थ की भावना रहती है जबकि तामसिक दान में अज्ञान और असंवेदनशीलता का भाव पाया जाता है।

यज्ञ, दान और तप का वास्तविक उद्देश्य

श्रीभगवान् यह भी बताते हैं कि यज्ञ, दान और तप जैसे सभी शुभ कर्म परमात्मा को समर्पित करने के लिए किए जाने चाहिए। यह हमारे कर्तव्य हैं और इन्हें श्रद्धा के साथ करना चाहिए।

जब हम प्रत्येक कर्म को परमात्मा को अर्पित करते हैं, तब वह कर्म पवित्र और सार्थक बन जाता है।

17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहतें हैं कि यज्ञ, दान और तप करते समय **"ॐ तत् सत्"** का स्मरण करने से यह भावना दृढ़ होती है कि हम यह सब कार्य परमात्मा के लिए कर रहे हैं। इससे हमारे कर्म शुद्ध, सात्त्विक और फलदायी बनते हैं।

"ॐ तत् सत्" परमात्मा के तीन पवित्र नाम हैं। इन तीनों नामों को वेदों में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। यह तीनों शब्द सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म के प्रतीक हैं।

हम किसी अध्याय का पाठ **"ॐ"** से प्रारम्भ करते हैं।

"ॐ श्री परमात्मने नमः" यह हमें परमात्मा से जोड़ने का माध्यम बनता है।

प्रश्न- "ॐ तत् सत्" क्या है?

उत्तर- **"ॐ तत् सत्"** परमात्मा के तीन पवित्र नाम हैं।

प्रश्न- इन तीनों नामों का प्रयोग कब किया जाता है?
उत्तर- यज्ञ, दान और तप जैसे शुभ कार्यों के समय इनका उच्चारण किया जाता है।

प्रश्न- सृष्टि की रचना किसने की है?
उत्तर- सम्पूर्ण सृष्टि की रचना परमात्मा द्वारा की गई है।

"ॐ तत् सत्" केवल शब्द नहीं हैं यह हमें परमात्मा की स्मृति दिलाते हैं।

"ॐ" से हम श्रीभगवान् को पुकारते हैं।

"तत्" का अर्थ है- वह परमात्मा जिसके लिए हम सब कुछ करते हैं।

"सत्" का अर्थ है- सत्य और शुभ।

यज्ञ, दान या तप- इन नामों का स्मरण करने से हमारा मन शुद्ध और एकाग्र बनता है।

सृष्टि की रचना ब्रह्माजी ने की। यह सत्य है कि ब्रह्माजी सृष्टि के रचयिता माने जाते हैं किन्तु उन्हें भी शक्ति परमात्मा से ही प्राप्त होती है। परमात्मा की प्रेरणा से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने-अपने कार्य करते हैं-

ब्रह्मा- सृष्टि के रचनाकर्ता हैं।

विष्णु- पालनकर्ता हैं।

महेश- संहारकर्ता हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण, वेद और यज्ञ- इन सभी की उत्पत्ति भी परमात्मा से ही हुई है।

17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहतें हैं कि **"ॐ"** केवल एक शब्द नहीं है, यह श्रीभगवान् से जुड़ने का सरल माध्यम है। हम जब श्रद्धा के साथ **"ॐ"** का उच्चारण करते हैं तब हमारे सभी कार्य पवित्र और सफल बनते हैं।

"ॐ तत् सत्" ये तीनों नाम वेदों में अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गए हैं। यज्ञ, दान और तप जैसे सभी शुभ कर्मों में इनका विशेष सम्बन्ध होता है।

वेद मन्त्रों का उच्चारण सदैव **"ॐ"** से प्रारम्भ किया जाता है जैसे गायत्री मन्त्र भी **"ॐ भूर् भुवः स्वः"** से आरम्भ होता है। इससे स्पष्ट होता है कि **"ॐ"** श्रीभगवान् का पवित्र नाम है जिसके द्वारा हम परमात्मा को स्मरण करते हैं।

प्रश्न- वेद-मन्त्रों का प्रारम्भ किस शब्द से किया जाता है?
उत्तर- वेद-मन्त्रों का प्रारम्भ **"ॐ"** से किया जाता है।

प्रश्न- **"ॐ"** का उच्चारण कैसे बनता है?

उत्तर- **"ॐ"** तीन ध्वनियों से मिलकर बना है- **अ, उ और म**।

प्रश्न- पूजा का प्रारम्भ प्रायः किसकी आराधना से किया जाता है?
उत्तर- पूजा का प्रारम्भ भगवान् गणेशजी की आराधना से किया जाता है।

"ॐ" श्रीभगवान् का एक पवित्र नाम है। हम जब **"ॐ"** का उच्चारण करते हैं तब ऐसा माना जाता है कि हम परमात्मा को पुकार रहे हैं। किसी को बुलाने के लिए जैसे उसका नाम लिया जाता है वैसे ही "ॐ" के माध्यम से हम श्रीभगवान् से जुड़ते हैं।

यज्ञ, दान और तप **"ॐ"** के उच्चारण से प्रारम्भ करने से वे सात्त्विक बनते हैं। इन सभी कर्मों का उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति होती है जिसे मोक्ष कहा जाता है।

"ॐ" को संस्कृत में **"प्रणव"** कहा जाता है। इसका उच्चारण तीन अक्षरों से मिलकर होता है-

अ (अकार)

उ (उकार)

म (मकार)

इन तीनों के मिलन से **"ॐ"** की ध्वनि उत्पन्न होती है। यह ध्वनि सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त मानी जाती है।

प्रत्येक शुभ कार्य के आरम्भ में भगवान् श्रीगणेश की पूजा की जाती है, क्योंकि उन्हें विघ्नहर्ता कहा जाता है।

"ॐ" को भी गणेश जी का स्वरूप माना जाता है। इस कारण हर वेद मन्त्र और पूजा **"ॐ"** से प्रारम्भ की जाती है।

हम सभी को प्रतिदिन किसी भी शुभ कार्य से पहले **"ॐ"** का स्मरण करना चाहिए। इससे मन एकाग्र होता है और कार्य में सफलता की सम्भावना बढ़ती है।

17.25

तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|
दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहतें हैं कि **"तत्"** का स्मरण हमें सिखाता है कि हम जो भी करें, वह श्रीभगवान् के लिए करें। इसी भावना से जीवन पवित्र और सफल बनता है।

"तत्" का अर्थ है- वह परमात्मा। यह शब्द हमें स्मरण कराता है कि हमारे सभी कर्म उसी परमात्मा के लिए होने चाहिए।

प्रश्न- जीवन में सबसे श्रेष्ठ इच्छा कौन सी होनी चाहिए?
उत्तर- जीवन में केवल एक ही श्रेष्ठ इच्छा होनी चाहिए- परमात्मा की प्राप्ति।

प्रश्न- क्या हमें श्रीभगवान् से कुछ माँगना चाहिए?
उत्तर- आवश्यकता के अनुसार प्रार्थना की जा सकती है, साथ ही यह भाव होना चाहिए कि जो श्रीभगवान् उचित समझें, वही प्रदान करें।

प्रश्न- **"तत्"** शब्द हमें क्या सिखाता है?

उत्तर- "तत्" हमें सिखाता है कि हमारे सभी कर्म परमात्मा को समर्पित होने चाहिए।

जीवन में अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, फिर भी सबसे श्रेष्ठ इच्छा परमात्मा को प्राप्त करने की मानी जाती है। यही इच्छा मन को शुद्ध बनाती है और अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देती है।

यह कार्य परमात्मा के लिए है कार्य करते समय यह भावना रखनी चाहिए। यही "तत्" का संदेश है। इस भाव से किया गया यज्ञ, दान और तप फल की इच्छा से मुक्त हो जाता है।

हम जैसे अपने मित्र से मन की बात साझा करते हैं वैसे ही परमात्मा से भी सरलता से संवाद किया जा सकता है।

प्रतिदिन कुछ समय शान्त बैठकर श्रीभगवान् को धन्यवाद देना, अपने अनुभव साझा करना और अपनी आवश्यकताएँ निवेदन करना एक श्रेष्ठ अभ्यास है। इससे मन में श्रद्धा और विश्वास दृढ़ होता है।

पूजा के लिए बाहरी आडम्बर आवश्यक नहीं है। एक पत्र, एक पुष्प, एक फल या थोड़ा जल भी श्रद्धा से अर्पित किया जाए, तो वह पर्याप्त होता है। मुख्य बात शुद्ध हृदय और प्रेमपूर्ण भावना है।

17.26

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|
प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहतें हैं कि **'सत्'** से जुड़े प्रत्येक शब्द में पवित्रता, सच्चाई और कल्याण का भाव निहित रहता है। जीवन में सद्भाव, सत्संग, सत्कर्म और सद्बुद्धि को अपनाने से मनुष्य का जीवन उज्ज्वल बनता है और वह धीरे-धीरे परमात्मा के समीप पहुँचता है।

सत् का तत्त्व- शुद्ध भाव, श्रेष्ठ कर्म और परम सत्य

'सत्' का अर्थ परम सत्य है। परमात्मा ही एकमात्र सत्य हैं, शेष सब नश्वर और परिवर्तनशील है। इसी कारण **'सत्'** श्रीभगवान् का एक पवित्र नाम माना गया है। बालकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि जहाँ शुद्धता, पवित्रता और सत्य का निवास होता है, वहीं 'सत्' का प्रकट रूप दिखाई देता है।

जब मन में निर्मल श्रद्धा जाग्रत होती है, तब उस भाव को **'सद्भाव'** कहा जाता है। यह भाव सात्त्विक होता है, जिसमें स्वार्थ, कपट और अहङ्कार का स्थान नहीं रहता। इसी प्रकार श्रेष्ठ और पवित्र मनोवृत्ति को **'साधुभाव'** कहा जाता है, जिसमें दूसरों के कल्याण की भावना निहित रहती है। इस प्रकार 'सत्' का प्रयोग उन सभी स्थितियों में होता है जहाँ मन, वचन और कर्म शुद्ध एवं उज्ज्वल बने रहते हैं।

श्रीभगवान् आगे बताते हैं कि जो कर्म परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से किए जाते हैं, वे 'सत्कर्म' कहलाते हैं। ऐसे कर्म मनुष्य के जीवन को ऊँचा उठाते हैं और उसे धर्म के मार्ग पर स्थिर रखते हैं। 'सत्संग' का अर्थ भी यही है कि श्रेष्ठ और सद्गुणी व्यक्तियों के साथ रहकर ज्ञान प्राप्त किया जाए, जिससे बुद्धि निर्मल और जागरूक बने। इसी प्रकार 'सद्बुद्धि' वह बुद्धि है जो सत्य को पहचानती है और सदैव सही मार्ग का अनुसरण करती है।

17.27

यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|
कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||

यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहतें हैं कि प्रत्येक कार्य श्रद्धा, प्रेम और सच्चाई के साथ किया जाए। यज्ञ, दान और तप को केवल क्रिया न मानकर एक पवित्र कर्तव्य के रूप में अपनाना चाहिए।

यज्ञ, दान, तप- दैवीय गुण तथा 'सत्' और 'असत्' का विवेचन

यज्ञ, दान और तप मनुष्य के दैवीय गुण हैं। पूर्व में वर्णित दैवीय सम्पत्तियों में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'अभयम्, सत्त्वसंशुद्धिः, ज्ञानयोगव्यवस्थितिः, दानम्, दमः, यज्ञः, स्वाध्यायः, तपः' आदि गुण मनुष्य को ऊँचा उठाने वाले दिव्य गुण हैं। यज्ञ, दान और तप के माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को शुद्ध, संयमित और भगवान् के समीप ले जाता है।

जब ये तीनों कर्म सात्त्विक भाव से, शुद्ध श्रद्धा के साथ और कर्तव्य समझकर किए जाते हैं, तब वे **'सत्'** स्वरूप माने जाते हैं। 'सत्' का अर्थ सत्य, पवित्र और कल्याणकारी होता है। जो भी कार्य श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिए, निष्काम भाव से और निर्मल हृदय से किया जाता है, वह 'सत्कर्म' कहलाता है। ऐसे कर्म मनुष्य के जीवन को प्रकाशमान बनाते हैं और उसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं।

प्रश्न: 'सत्' का विलोम क्या है?
उत्तर: 'असत्'।

'असत्' का अर्थ है असत्य, अपवित्र और वह कर्म जिसमें श्रद्धा, शुद्धता तथा सत्य का अभाव हो। श्रीभगवान् आगे समझाते हैं कि यज्ञ, दान और तप भी **'असत्'** हो सकते हैं जब उनमें श्रद्धा का अभाव रहता है या वे केवल दिखावे, अहङ्कार अथवा स्वार्थ के लिए किए जाते हैं। ऐसे कर्म बाह्य रूप से अच्छे प्रतीत होते हुए भी वास्तविक फल प्रदान नहीं करते।

17.28

अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन ने श्रीभगवान् से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया। अर्जुन ने जिज्ञासा प्रकट की कि जो व्यक्ति शास्त्र-विधि को न जानता हुआ भी श्रद्धा के साथ यज्ञ, पूजा अथवा हवन करता है, उसकी स्थिति क्या मानी जाती है। ऐसा साधक सात्त्विक, राजसिक अथवा तामसिक किस प्रकार का समझा जाता है? इस प्रश्न के माध्यम से अर्जुन ने कर्म की बाह्य विधि से अधिक उसके आन्तरिक भाव का रहस्य जानना चाहा।

श्रीभगवान् उत्तर में स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक कर्म में श्रद्धा का अत्यन्त महत्त्व है। जिस व्यक्ति के भीतर श्रद्धा का अभाव रहता है, उसके द्वारा किया गया यज्ञ, दान अथवा तप **'असत्'** कहलाता है। बिना श्रद्धा के किया गया कोई भी धार्मिक आचरण केवल बाहरी क्रिया बनकर रह जाता है। उसमें न तो आत्मिक शुद्धि होती है और न ही स्थायी कल्याण प्राप्त होता है।

ऐसे कर्म प्रायः दिखावे, अहङ्कार अथवा लोक-प्रशंसा की भावना से प्रेरित होते हैं। क्षणिक प्रसन्नता का अनुभव अवश्य होता है,

अन्तःकरण में स्थायी शान्ति का अभाव बना रहता है। इस प्रकार के आचरण से न इस लोक में वास्तविक सुख प्राप्त होता है और न ही परलोक में कोई कल्याण होता है।

जो साधक इसके विपरीत **श्रद्धा, विश्वास और प्रेम** के साथ श्रीभगवान् के लिए **यज्ञ, दान तथा तप** करता है, उसका प्रत्येक कर्म **'सत्'** बन जाता है। ऐसे कर्म आत्मा को शुद्ध करते हैं और साधक को परमात्मा की ओर अग्रसर करते हैं।

श्रद्धा ही कर्म को पवित्रता प्रदान करती है।

जीवन में इस ज्ञान को धारण करना आवश्यक है। प्रत्येक कर्म को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित करने का अभ्यास करना चाहिए।

'पढ़ो, पढ़ाओ और जीवन में लाओ' इस आदर्श को अपनाकर गीताजी के उपदेशों को व्यवहार में उतारना ही मानव जीवन की सार्थकता है। श्रद्धा से युक्त कर्म, शुद्ध विचार और समर्पण का भाव मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हैं और उसे परम कल्याण की ओर ले जाते हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- सान्वी दीदी
प्रश्न- सद्भावका अर्थ क्या है?
उत्तर- सद्भाव का अर्थ है अच्छे भाव। भाव का अर्थ है अच्छे विचार। जिस भी शब्द में सत् जोड़ा जाता है, वह सत्य या अच्छा बन जाता है जैसे सद्बुद्धि, सत्सङ्ग, सत्कर्म तथा सद्विचार आदि।

प्रश्नकर्ता- प्रत्युषा दीदी
प्रश्न- जो लोग श्रीभगवान् में विश्वास नहीं करते, उन्हें श्रीभगवान् क्या देते हैं?
उत्तर- कुछ लोग श्रीभगवान् को नहीं मानते लेकिन वे कार्य अच्छे कर सकते हैं तो शायद वे मनुष्य जन्म लेकर आएँगे। उन्हें श्रीभगवान् की प्राप्ति तो नहीं होगी क्योंकि उनको श्रीभगवान् में विश्वास नहीं है।

कुछ लोग ऐसे हैं जो श्रीभगवान् को भी मानते नहीं है और अच्छे काम भी नहीं करते हैं तो वे नीच योनि में जाएँगे, अधोगति को प्राप्त होंगे- कीट-पशु, पक्षी आदि का जन्म लेंगे।

प्रश्नकर्ता- हरि भैया
प्रश्न- सत्सङ्ग का अर्थ क्या होता है?
उत्तर- सङ्ग का अर्थ है साथ। जैसे मित्र का सङ्ग और सत्सङ्ग का अर्थ है अच्छे लोगों के साथ रहना और अच्छे विचार करना। इसमें अच्छे भजन-कीर्तन, प्रवचन आदि होते हैं। स्वामी जी का जो प्रवचन है, हम उसको सत्सङ्ग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता- शुभदा दीदी
प्रश्न- श्लोक **विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।** इसका अर्थ क्या है?
उत्तर- विधिहीन का अर्थ है जो तामसी यज्ञ करते हैं, शास्त्र विधि में जो बताया गया है उसके विरुद्ध जाकर करते हैं और मन्त्रहीन यानी बिना मन्त्र के जब पूजा करते हैं, केवल दिखावा करना है और अदक्षिणम् यानी कि ब्राह्मण को बुलाते हैं लेकिन उनको बिना दक्षिणा के भेज देते हैं। वहाँ अन्नदान भी नहीं होता है। वह सब तामसी यज्ञ कहा गया है।

जब हम पूजा करते हैं, ब्राह्मणों को बुलाते हैं तो उनको दक्षिणा भी देना है, अन्नदान भी करवाना है और वहाँ विधिशास्त्र में जैसे बताया गया है, वैसे ही हमें पूजा-पाठ करने हैं।

ॐश्रीकृष्णार्पणमस्तु

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||